ग्रन्थसंख्या — १४३

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

श्रीश्रीविश्वनाथचक्रवर्तिमहोदयविरचितम्

स्वप्नविलासामृतम्

पदावल्या परिभावितम्

कृष्णदास कृतेन हिन्दीभाषानुवादेन चालङ्कृतम् ।

श्रीरामनवमी
सम्वत् २०२५
पौछावर—२५ पैसे

प्रकाशक :
कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवरवाले ।

Shri Keshabji Goudiya Math
Kans Tilla, Agra Road
Mathura-281001 U.P

दो शब्द

करुणा-वरुणालय महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव, जो प्रेमावतार माने जाते हैं, उन्होंने समुच्चय जगत् को हरिनाम-संकीर्त्तन-माध्यम से प्रेमवन्या में डुबाकर आत्मसात किया है। राधिका-भाव-कान्ति से आच्छादित नन्दनन्दनस्वरूप आप प्रेम की प्रबल-दशा में आकर कभी तो सोने के पिण्ड की भांति हो जाते थे, कभी श्रीअंग के सन्धिस्थल (जोड़) खुल जाने पर दीर्घकाय हो जाते थे और कभी नेत्रों से पिचकारी की भांति इस प्रकार अश्रुधारा छूटती थी जिससे पृथ्वीतल पर परनाले के रूप में बहकर सब को भिगो देती थी। भक्त-माल के टीकाकार प्रियादासजी ने उनका इन दशाओं का सुन्दर रूप से वर्णन किया है "आवे कभू प्रेम हेमपिण्डवत् तनु होत कभू सन्धि सन्धि छुटी अंग बढ़ि जात है, और एक नई रीति आंख पिचकारी मानो उभै लाल प्यारी भावसागर समात है" इत्यादि। श्रीपादरघुनाथ गोस्वामीजीने स्तवावलीग्रन्थ में उन महाप्रभु के बारे में कहा है कि—

"अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी, रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः। रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्, स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥"

अर्थात्—वे चैतन्याकृति नन्दनन्दनदेव अतिशय रूप से हम सब के प्रति करुणा विस्तार करें, जो किसी प्रणयिजनवृन्द के पाररहित रससमूह का हरण कर उसका मधुर उपभोग करने के लिये अपनी कृष्ण-कान्ति को ढक कर तथा उन प्रणयिजन की गौरकान्ति का प्रकाश करते हुए गौरांग स्वरूप से नवद्वीप में प्रकट हुए ।

अस्तु इस प्रस्तुत स्वप्नविलासामृत के रचयिता श्रील-विश्वनाथ चक्रवर्ती महोदय हैं। यद्यपि "स्तवामृतलहरी" में यह स्तव सन्निवेशित नहीं है तो भी यह उन्हीं के द्वारा विरचित मधुरभाव-पूर्ण स्वतन्त्रस्तव है। निधुवन में बीती हुई प्रिया-प्रियतम की भावि महाप्रभु के प्रकट होने के बारे में लीला से रञ्जित यह सरस भावपूर्ण स्तोत्ररत्न है। पहले बंगाक्षर में यह स्तव सटीक-सानुवाद नवाबपुर-ढाका, बंगाल से प्रकाशित हो चुका है। इस समय इसको देवाक्षर में सटीक-सानुवाद प्रकाशित करने के लिए प्रबल प्रेरणा इसलिये हुई कि विगत कार्त्तिक महीने में मथुरा में श्रीकृष्ण की जन्मभूमि पर श्रीकुंवरपालजी रासमण्डली के स्वामी के द्वारा गौरांगदेव के लीलानुकरण का विशालरूप से आयोजन हुआ था। इस आयोजन का प्रधान श्रेय प्राप्त है पूज्य गोस्वामी पुरुषोत्तमजी महाराज को। उन्होंने इस लीलानुकरण द्वारा मथुरानिवासी आबालवृद्धवनिता तथा अन्यान्य बाहर के सज्जनों को परम उत्साहित किया। सब कोई महाप्रभु के अवतार होने के निगूढ़ अभिप्राय से अवगत हुए। इस विशाल आयोजन में देहलीनिवासी

उदारहृदयवाले सेठ जयदयाल जी डालमिया तथा मथुरानिवासी अन्यान्य सज्जनों का सम्पूर्ण सहयोग रहा, श्री गौरांगदेव की प्राथमिक लीला स्वप्नविलासामृत है जो अति चाह के साथ दिखलाई गई थी। इसलीला की प्रधाननेत्री नन्दनन्दनश्रीकृष्ण की परमप्रेयसी महाभाववती राधिका हैं, स्थान निधुवन है, और विषय श्रीकृष्ण के गौरांग स्वरूप में नवद्वीप (नदीया) में भावी प्रकट होने का है, निधुवन में यह लीला प्रारम्भ हुई, जिसका प्रसारण नवद्वीप में तथा सारे संसार में हुआ। संकीर्त्तन के प्रचारक, नित्यधामप्राप्त श्री रामदासबाबाजी गौरनिष्ठ, हमारे गुरुदेव बाबाजी-महाराज इस लीला का 'आखर'-सम्बलित मधुर गान करते थे। वे जब वृन्दावन में आते थे तब निधुवन में बैठकर इस लीला को अवश्य ही गाते थे तथा वृन्दावन की वैष्णवमण्डली को गौररस में निमज्जित करते थे, आशा है प्रेमी-सज्जन इसका मरम आस्वादन करेंगे, अतः यह मेरा प्रयास है॥ इति॥

—कृष्णदासबाबा

आमुख

श्रीकृष्ण-भक्ति में राधातत्व का बड़ा महत्व है। चैतन्य-महाप्रभु को भक्तगण राधा-भाव-कान्ति से आच्छादित श्रीकृष्ण स्वरूप ही मानते हैं किन्तु उनमें राधा-तत्व बाह्य चक्षु को स्पष्ट दृष्टिगत न होने से एवं गौराङ्ग होने से कुछ सन्देह की सम्भावना है। उसे निरस्त करना ही इस स्वप्नविलासामृत का रहस्य है।

राधा-कृष्ण का एकत्व ही चैतन्य-स्वरूप में प्रकट हुआ है, यही इसका सार है। प्रेमतत्व के इस चरम को चक्रवर्तीजी ने राधिकाजी के स्वप्न एवं कौस्तुभ की दीप्ति के माध्यम से बड़ी चमत्कृतिपूर्ण विधि से समझाया है। एतदर्थ भक्तजन उनके चिरऋणी रहेंगे।

पूज्य बाबा श्रीकृष्णदासजी ने हिन्दी-अनुवाद के साथ इसे देवाक्षरों में प्रकाशित कर हिन्दीभाषियों का बड़ा उपकार किया है। बाबाजी ने पूर्ण निस्वार्थरूप से अनेक अमूल्य ग्रन्थ-रत्नों का उद्धार किया है, मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि विश्व के भक्तजन इस ग्रन्थ का रसास्वादन कर कृतार्थ हो जावें।

—वीरभद्रमिश्र एम० ए०

सीतापुर, उ० प्र०

स्वप्नविलासामृतम्-

राधाकृष्णमिलितविग्रहगौरस्वरूपाय नमः—

प्रिय स्वप्ने दृष्टा सरिदिनसुतेवात्र पुलिनं
यथा वृन्दारण्ये नटनपटवस्तत्र वहवः।
मृदङ्गाद्यं बाद्यं विविधमिह कश्चिद्द्विजमणिः
स विद्युद्गौराङ्गः क्षिपति जगतीं प्रेमजेलधौ ॥ १ ॥

टीका—"राधाकृष्ण-प्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्मादेकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ। चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयञ्चैक्यमाप्तम्, राधा-भावद्युतिसुबलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्" इत्यादिपद्यानां सत्त्वगुणावलम्बिनां सात्वतसिद्धान्तसूचकेनाष्टकेन राधाकृष्णस्वप्नविलासामृतेन महाप्रभोरवतार-लीलामाह-'प्रिय स्वप्ने' इति। पद्यार्थो यथा—

राधा कृष्णस्य यः प्रणयस्तस्य विकृतिः परिणामरूपा ह्लादिनी-शक्ति-रूपा च, अस्माद्धेतो-रेकात्मानावपि तौ पुरा राधाकृष्णौ देहभेदं गतौ। अधुना तु ऐक्यतां प्राप्तं तद्द्वयं राधाकृष्णैतिद्वयं चैतन्याख्या यस्य तथाभूतं सत् प्रकटं कृष्णस्वरूपं नौमि। कीदृशं राधाया भावद्युतिभिश्च सुबलितं युक्तमिति। अत्र पद्ये वह्वाशंका उत्पद्यन्ते। यथा एकात्मानावपि देहभेदं गतावित्यत्र पुरा किं एकदेह एवासीत्? स च यदि श्रीकृष्णस्तस्य स्वरूपमेव तदा श्रीराधा-स्वरूपं नासीदिति। एक एवात्मा चिद्रूपः देहद्वयरूपेण परिणतो भूत्वा क्रीड़ा-श्चकार इत्युक्ते श्रीराधाकृष्णोभयस्वरूपस्वाभावो ध्वन्यते। यदि चैतन्यस्वरूपेणै-वात्मानोरैक्यमासीदित्युच्यते तदापि पूर्ववत एव दोषः स्यादिति। अधुना

चैतन्याख्यं प्रकटिनमित्यनेन पुरा चैतन्यदेवो नासीदिति स्वयमायाति। यदि क्वापि समये राधाकृष्णस्वरूपेण क्वापि समये महाप्रभुस्वरूपेण इत्यादि प्रकारेण सर्व्वा एव व्याख्याः संशयसूचका भवन्ति श्रीविग्रह-लीलादेः नित्यत्वकथनात्। तथाहि महावाराहे—

"सर्व्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः। हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्। "परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्च सर्व्वतः।" इत्यादि प्रमाणेन भगवद्विग्रहाणां सर्व्वेषामेव नित्यत्वे दृढीकृतत्वात्। पूर्वोक्त-मायावादिनां मतं नादरणीयम्। एवञ्चेद् व्याख्यान्तरेण प्रकृतसिद्धान्तमाह—केचित् सन्देहापत्तिः क्रियन्ते तन्निरासार्थं अत उक्तं सर्व्वसंशयनिवर्त्तकमष्टक-मिदमिति। प्रकृतमनुसरामः "प्रिय स्वप्ने दृष्टे"ति हे प्रिय! हे श्रीकृष्ण! यथा वृन्दारण्ये इनः सूर्य्यस्तस्य सुता श्रीयमुना तथा स्वप्ने मया कापि सरिन्नदी दृष्टा, यथा वृन्दारण्ये पुलिन तथा तत्रापि पुलिनं दृष्टम्, यथा अत्र नटनपट-वस्तथा तत्रापि नटनपटवो दृष्टाः, विविधमृदङ्गाद्यं वाद्यं यथा इह तथा तत्रापि दृष्टम्। कश्चिद्द्विजमणिर्दृष्टः, यथा आवां तथा इति पश्चादुक्तं भावि। विद्युदिव गौराङ्गः स द्विजमणिः प्रेमजलधौ जगतीं क्षिपति। अत्र लीला-विशिष्टराधाकृष्णाभ्यां लीलाविशिष्टचैतन्यदेवो दृष्ट इत्यनेन सर्व्वावतारलीलादीनां नित्यत्वं स्वत एवायातम्। महाप्रभोः प्राकट्ये राधिकाया अपि प्राकट्यात् एक-दैव राधाभावकान्तियुक्तचैतन्यदेवस्य राधाकृष्णयोर्लीलासहितदर्शनात् सर्व्व-शंका निरस्तेति भावः ॥१॥

"राधा कृष्ण-प्रणय-विकृतिर्ह्लादिनो-शक्ति" रित्यादि-श्रीस्वरूप-गोस्वामी महोदय की कड़चा के श्लोक के द्वारा सत्वगुणावलम्बियों का सिद्धान्त-सूचक राधाकृष्ण स्वप्नविलास नामक अष्टक प्रस्तुत हो रहा है, जिसमें महाप्रभु गौरागदेव की अवतारलीला वर्णित है। उक्त कड़चा श्लोक का अर्थ यह है—श्रीराधिका श्रीकृष्ण-प्रणय की

कदाचित् कृष्णेति प्रलपति रुदन् कर्हिचिदसौ
क्व राधे हा हेति श्वसिति पतति प्रोज्झति धृतिम् ।

असौ गौराङ्गः कदादिद्रुदन् हे कृष्ण इत्युच्चार्य्य प्रलपति, कदाचिदसौ हा हेति उक्त्वा हा राधे ! त्वं कुत्र वर्त्तसे इत्युच्चार्य्य श्वसिति, पतति धृतिं

परिणामस्वरूपा तथा ह्लादिनीशक्ति-रूपिणी हैं । अतः एकात्मा होने पर भी पहले दोनों ने भिन्न-भिन्न शरीर धारण किया है। अब वे दोनों एकात्मक होकर श्रीचैतन्य-स्वरूप में प्रकट हुए हैं। श्रीराधिका-भाव एवं कान्तियुक्त उन कृष्णस्वरूप श्रीचैतन्यदेव को मैं नमस्कार करता हूँ। इस श्लोक में बहुत कुछ शंका उत्पन्न हो रही है। यदि कहो कि श्रीराधा-कृष्ण एकात्म होकर भी देह भेद को प्राप्त हुए हैं तो क्या पहले एक देह में थे ? यदि ऐसा स्वीकार करते हो तब श्रीकृष्णस्वरूप में वे रहे, अथच श्रीराधा-स्वरूप में नहीं, यही अवश्य मानना होगा। इसका उत्तर यह हो सकता कि—एकात्मा तो हैं ही परन्तु चित्तरूप से दो देह में परिणत होकर क्रीड़ा करते हैं। ऐसा कहने पर श्रीराधाकृष्ण उभय स्वरूप स्वभावसिद्ध यह सत्य हुआ। यदि कहो कि श्रीराधा-कृष्ण दोनों एक होकर श्री चैतन्य-रूप में प्रकट हुए हैं इससे भी पूर्वोक्त दोष आ पड़ता है कि अभी चैतन्यरूप में प्रकट हुए इससे पहले चैतन्यदेव रहे नहीं। और यदि किसी समय श्रीराधा-कृष्ण रूप में प्रकट एव किसी समय श्रीमहाप्रभु रूप में होने की व्याख्या की जाती है तो समस्त व्याख्या संशय जनक हो सकती। उससे भगवद् विग्रह तथा लीलातत्व का नित्यत्व ध्वंस हो जाता है। महावराह पुराण में लिखित है कि—'परमेश्वर के समस्त अवयव (स्वरूप) नित्य परमानन्दसमष्टि रूप, ज्ञानघन एवं सर्वव्यापी हैं।

नटत्युल्लासेन क्वचिदपि गणैः स्वैः प्रणयिभि-
स्तृणादि-ब्रह्मान्तां जगदतितरां रोदयति सः ॥ २ ॥

प्रोज्झति, क्वचिदुल्लासेन नटति, स गौर उक्तप्रकारेण प्रणयिभिः स्वैर्गणैः सह प्रलापादिकं कुर्व्वन् तृणादिब्रह्मान्तां जगदतिशयां रोदयति ॥२॥

त्रिगुणात्म प्राकृतिक देह की भाँति क्षयोदय सम्पन्न नहीं हैं।' इत्यादि प्रमाण बल से समस्त भगवद्विग्रह का नित्यत्व दृढ़ हुआ तथा मायावादियों का वितर्क हेयत्व हुआ।

अब मूलश्लोकों का अनुसरण किया जावे—"प्रिय स्वप्ने दृष्टा' इत्यादि। हे प्रिय! श्रीकृष्ण! उठिये, सुनिये, आज मैंने एक आश्चर्य स्वप्न देखा, स्वप्न में यमुना की भाँति एक नदी देखी, अर्थात् यमुना से जिस प्रकार वृन्दावन वेष्टित है उसी प्रकार उस स्थान को घेरती हुई एक नदी देखने में आई है। यहां जिस प्रकार पुलिन मौजूद हैं वहां भी उसी प्रकार मनोहर पुलिन देखने में आया, और यहाँ जिस प्रकार बहुत गोपीजनों की नृत्यपटुता विद्यमान है वहाँ भी उसी प्रकार बहुजनों की नृत्य-पटुता देखने में आई है। यहाँ जिस प्रकार मृदंगादि बहु-प्रकार वाद्य बजते हैं वहाँ भी मृदंग-करतालादि (झांझ) बहु प्रकार वाद्य बज रहे थे अधिकंतु मैंने वहाँ एक आश्चर्य यह देखा कि—एक विद्युत् की भाँति गौरवर्ण द्विजमणि अर्थात् ब्राह्मण-श्रेष्ठ युवक नृत्य करता हुआ मानो समस्त चराचर जगत् को प्रेम सागर में डुबा रहा है। यहाँ लीलाविशिष्ट राधा-कृष्ण की विद्यमानता में लीला-विशिष्ट चैतन्यदेव दृष्ट हुए। इससे समस्त अवतार की लीलादि का नित्यत्व सिद्ध हुआ है। महाप्रभु के प्राकट्य में श्रीराधिका के प्राकट्य हेतुक एक ही समय में श्रीराधा-कृष्ण की लीला के साथ श्रीराधा-

ततो बुद्धिर्भ्रान्ता मम समजनि प्रेक्ष्य किमहो
भवेत् सोऽयं कान्तः किमयमहमेवास्मि न परः ।
अहञ्चेत् क्व प्रेयान्मम स किल चेत् क्वाहमिति मे
भ्रमो भूयो भूयानभवदथ निद्रां गतवती ॥ ३ ॥

इत्यद्भुतं दृष्ट्वा मम बुद्धिर्भ्रान्ता समजनि, भ्रान्तिप्रकारमाह—मम नामग्रहणादिप्रकारं दृष्ट्वा अयं द्विजमणिर्मम कान्तो यः श्रीकृष्णः स एव भवेत्, किल स एव चेत् तदहं क कुत्र ? एवं श्रीकृष्णनामग्रहणादिप्रकारं दृष्ट्वा अयं द्विजमणिरहमेवास्मि भवामि । अहञ्चेत् मम प्रेयान् श्रीकृष्णः क कुत्र वर्त्तते इति शेषः, एवम्प्रकारेण मे भूयान् भ्रमो भूयो बारम्बारमभवत् । अथानन्तरं निद्रां गतवती ॥३॥

भाव एवं राधाकान्तियुक्त श्रीचैतन्यदेव की लीला दिखलाई गई है। अतएव सर्वप्रकार शंका निरस्त हुई ॥ १ ॥

वह गौरांग कभी रोदन के साथ "हे कृष्ण !" इस प्रकार उच्चारण कर प्रलाप कर रहा था कभी वा "हा राधे ! हा राधे ! तुम कहाँ हो' इस प्रकार कह कर दीर्घनिश्वास त्याग कर भूतल में गिर रहा था तथा धैर्यशून्य हो जाता था, कभी वा आनन्द के साथ नृत्य करता था और कभी अपने प्रणयिजनगण के साथ पूर्व की भाँति प्रलापादि कर तृणादि से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त इस जगत् को अत्यन्त रोदनयुक्त करा रहा था ॥ २ ॥

इस प्रकार अद्भुत स्वप्न देख कर मेरी बुद्धि भ्रान्त हो गई कि मैंने यह क्या आश्चर्य देखा ? यह द्विजमणि क्या मेरे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण हैं ? क्यों कि "हा राधे हा राधे" करके अधैर्य हो रहे हैं।

प्रिये दृष्ट्वा तास्ताः कुतुकिनि मया दर्शितचरी
रमेशाद्या मूर्त्तीर्न खलु भवती विस्मयमगात् ।
कथं विप्रो विस्मापयतुमशकत् त्वां तव कथं
तथा भ्रान्तिं धत्ते सहि भवति को हन्त किमिदम् ॥४॥

श्रीराधायाः स्वप्नं श्रुत्वा श्रीकृष्णः प्राह प्रिये इति । हे कुतुकिनि ! हे प्रिये ! मया दर्शितचरी दर्शितपूर्व्वास्तास्ता रमेशाद्या मूर्त्तीर्नारायणाद्या मूर्त्ती दृष्ट्वा भवती कर्त्री विस्मयं खलु नागात् नासीत् । स विप्रः कथं केन प्रकारेण त्वां विस्मापयतुमशकत् । एवम्भूतायास्तव चित्तं तथा भ्रान्तिं कथं धत्ते ? स विप्रः को भवति ? हन्त विस्मये, इदं किमद्भुतं इत्यर्थः । रमेशाद्या मूर्त्तीरित्यत्र बहुवचनेन ध्वन्यते । एकदा तु नारायणमूर्त्तिः स्वमेव दर्शिता, अन्यसमये तु श्रीराधया कौतुकवशादुक्तं हे कृष्ण ! नारायणमूर्त्तिं दर्शय, क्वापि समये रघुनाथमूर्त्तिं दर्शय इत्युक्तः श्रीकृष्णस्तास्तां मूर्तिं दर्शयामास, शेषशायिरूपं श्रीकाम्यवने व्यक्तमधुनाप्यस्ति । एवं क्वापि समये कौतुकवशात् परस्परकथालापे श्रीराधिकया उक्तम्–रहस्यलीलाजन्यं सुखादिकं पुरुषस्य चाञ्चल्यवशाद् यथा स्त्रियो जानन्ति तथा स्त्रीणां मनोगतं पुरुषा न जानन्ति । तदा श्रीकृष्ण आह–तव मनोगतं मया तु एकमूर्त्त्या सदैवानुभवामि । तदा सा आह मिथ्यैव उच्यते । ततः स आह सत्यमेव पुनः सहि प्राह तां मूर्त्तिं दर्शय अत एव महाप्रभोः स्वप्ने दर्शनं कारयामास इति भावः ॥४॥

अथवा मैं हूँ, क्योंकि "कृष्ण ! कृष्ण !" कह कर वे अश्रु विसर्जन कर रहे हैं। यदि मैं हूँ तो मेरे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण कहाँ हैं ? और यदि वह श्रीकृष्ण हैं तो मैं कहाँ हूँ ? इस प्रकार बार बार चिन्ता वितर्क से मुझे प्रचुर भ्रम उत्पन्न हुआ, अनन्तर निद्रायुक्त हो गई ॥३॥

इस प्रकार श्रीराधिका का स्वप्नविवरण सुनकर श्रीकृष्ण

इति प्रोच्य प्रेष्ठां क्षणमथ परामृष्य रमणो
हसन्नाकूतज्ञं व्यनुददथ तं कौस्तुभमणिम् ।
तथा दीप्तिं तेने सपदि स यथा दृष्टिमिति तद्
विलासानां लक्ष्मं स्थिरचरगणैः सर्व्वमभवत् ॥ ५ ॥

इत्यनेनावहित्थया प्रतारणवाक्यमुक्त्वा रमणः श्रीकृष्णः क्षणं परामृश्य हसन् आकुतज्ञमभिप्रायज्ञं कौस्तुभं व्यनुदत् अकरोत् स कौस्तुभमणिः सपदि तत्क्षणादेव तथा दीप्तिं तेने, स्थिरचरगणैस्तस्य सम्यग्विलासानां लक्ष्म चिन्हं यथादृष्टमेव स्वप्ने दृष्टं तथा सर्व्वमभवत् । द्वादशस्कन्धीय एकादशाध्याये– "कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिं विभर्त्यजः ।" अत्र टीका–कौस्तुभस्य व्यपदेशेन स्वरूपेण स्वात्मज्योतिः शुद्धं जीवचैतन्यं कौस्तुभस्येव विहितं विभूतिं धत्ते ॥५॥

कहने लगे—हे प्रिये ! हे कुतुकिनि ! तुमने पहले नारायणादि मूर्त्ति का दर्शन किया है । उससे तुम्हारा विस्मय उत्पन्न नहीं हुआ । अर्थात् कुतुकिनी तुम्हारे कहने पर मैंने कभी नारायणमूर्त्ति, कभी वा रामचन्द्रमूर्ति इत्यादि दिखलाई है परन्तु उससे तुम्हारे चित्त में विस्मय उत्पन्न नहीं हुआ । अब वह विप्र किस प्रकार तुम्हारे चित्त को विस्मित करा रहा है ? और तुम्हें इस प्रकार भ्रान्ति क्यों हुई ? अहो आश्चर्य, वह ब्राह्मण-युवक कौन है ?

किसी समय प्रसंगवश श्रीराधिकाने श्रीकृष्ण से कहा था— "पुरुष-जाति प्राय करके चंचल होती है, उस से रहस्यलीलाजात सुखादि स्त्रीजाति जान लेती है परन्तु स्त्री जाति के मनोगत भाव को पुरुष नहीं जान सकता ।" तब श्रीकृष्णने कहा था, मैं एक मूर्त्ति से

विभाव्याथ प्रोचे प्रियतम मया ज्ञातमखिलं
तवाकूतं यत्त्वं स्मितमतनुथास्तत्त्वमसि माम् ।
स्फुटं यन्नावादीर्यदभिमतिरत्राप्यहमिति
स्फुरन्ती मे तस्मादहमपि स एवेत्यनुमिमे ॥ ६ ॥

अथ श्रीराधिका विभाव्य प्रोचे किमाह हे प्रियतम तवाखिलमाकूतं मया ज्ञातम्, किं तत्राह–यत् यस्मात् त्वं स्मितमतनुथाः स्मितं चकर्थ तत् तस्मात् स गौरस्त्वमसि त्वं भवसि । स्फुटं व्यक्तं यथा स्यात्तथा नावादीरित्यनेन तथाहमप्यत्रेति मे अभिमतिः–रभिमानं यत् यस्मात् स्फुरन्ती प्रदीप्ता सती भाति तस्मादहमपि स गौर एव इत्यनुमिमे तेनाभिमानद्वारैव ममात्रावस्थितिर्गम्यते ॥६॥

तुम्हारे मनोगतभाव को सर्वदा जान लेता हूँ। उस पर राधिका ने कहा—तुम मिथ्या कहते हो, पुनः श्रीकृष्ण ने कहा नहीं मैं सत्य कहता हूँ इस पर राधिका ने कहा— उस मूर्त्ति को दिखाओ, इसी लिये स्वप्न में श्रीकृष्ण ने श्रीराधिका के प्रति महाप्रभु-मूर्त्ति का दर्शन कराया यह भावार्थ है ॥ ४ ॥

अनन्तर रमण श्रीकृष्ण प्रियतमा श्रीराधिका के प्रति इस प्रकार प्रतारणा वाक्य कह कर बाद में क्षणकाल चिन्ताकर कुछ हँसते हुए अपने अभिप्रायज्ञ कौस्तुभमणि को प्रकाशमान करने लगे। वह कौस्तुभमणि उस समय उसी प्रकार दीप्ति का विस्तार करने लगी, उसमें स्वप्न दृष्ट स्थावर जंगम के साथ विलासचिन्ह समूह परिदृश्यमान हुआ। भागवत के द्वादशस्कन्ध के एकादश अध्याय में शौनक-प्रश्न पर श्रीसूतजी के भगवद्वर्णन प्रसंग को लेकर आठवें श्लोक की टीका में श्रीधरस्वामि ने कहा है—"वह भगवान कौस्तुभ व्यपदेश से अपनी ज्योति में शुद्ध जीव चैतन्य को धारण करते हैं" ॥५॥

अनन्तर श्रीराधिका स्वप्नदृष्ट समस्त दर्शन कर "अहो! मैं

यदप्यस्माकीनं रतिपदमिदं कौस्तुभमणि
प्रदीप्यात्रैवादीदृशदखिलजीवानपि भवान् ।
स्वशक्त्याविर्भूय स्वमखिलविलासं प्रतिजनं
निगद्य प्रेमाब्धौ पुनरपि तदाधास्यसि जगत् ।।७।।

यत् यस्मात् अस्माकीनं रतिपदं रतेरास्पदं स्थानं कौस्तुभमणिं प्रदीप्य प्रकाश्य अत्र कौस्तुभमणावेव भवान् अखिलान् जीवानपि अदीदृशत् पुनः पुनः दर्शयामास । अपि शब्दात् स्वयमपि स्वशक्त्या आविर्भूय स्वमात्मानमखिल-विलासञ्च प्रतिजनं जनं जनं प्रति निगद्य व्यक्तमुक्त्वा जगत् पुनरपि प्रेमाब्धौ आधास्यसि ।।७।।

जिसकी परम प्रणयिनी करके गौरविनी हूँ उस श्रीकृष्ण को चतुराई की कोई संख्या नहीं हैं" इस प्रकार परितापित होकर कुछ चिन्ता कर कहने लगीं—हे प्रियतम ! मैंने तुम्हारा समस्त अभिप्राय जान लिया, वह गौरांग साक्षात् तुम ही हो । क्योंकि तुम स्पष्ट न कह कर ईषत् हँस रहे हो, मैं भी गौरांग हूँ । मेरी भी अभिमान-स्फूर्त्ति हो रही है मैं भी ऐसा अनुभव कर रही हूँ । और आप विशेष करके भाव एवं कान्ति के साथ गौरदेह में दीप्तिशील हो रहे हो ।। ६ ।।

क्योंकि हम सब के आसक्तिस्थान इस कौस्तुभमणि को प्रदीप्त करके उसमें जीव समुदाय को बार बार दर्शन कराया है, सुतरां यह उपलब्धि हो रही है, कि स्वयं अपनी शक्ति के साथ आविर्भूत होकर अपने को एवं अपनी समस्त लीलाओं को आपही प्रत्येक जन को व्यक्त रूप से कह कर पुनः इस चराचर जगत् को प्रेमसागर में मज्जित करोगे ।। ७ ।।

यदुक्तं गर्गेण व्रजपतिमपक्षं श्रुतिविदा
भवेत् पीतो वर्णः क्वचिदपि तवैतन्नहि मृषा ।
अतः स्वप्नः सत्यो मम च न तदा भ्रान्तिरभव-
त्त्वमेवासौ साक्षादिह यदनुभूतोऽसि तदृतम् ॥८॥

पिबेद् यस्य स्वप्नामृतमिदमहो चित्तमधुपः
स सन्देहस्वप्नात्त्वरितमिह जागर्त्ति सुमतिः ।
अवाप्तश्चैतन्यं प्रणयजलधौ खेलति यतो
भृशं धत्ते तस्मिन्नतुलकरुणां कुञ्जनृपतौ ॥ ९ ॥

तव क्वचित् पीतवर्णो भवेदिति श्रुतिविदा गर्गेण व्रजपतेर्नन्दस्य समक्षं यदुक्तमेव तद्वाक्यं मृषा नहि । अतो मम स्वप्नोऽपि सत्यः न च मम भ्रान्तिरभवत् असौ गौरः साक्षात् त्वमेव इह यदनुभूतोऽसि अनुभवविषयो भवसि तदपि ऋतं सत्यम् ॥८॥

यस्य चित्तमधुप इदमाश्चर्य्यं स्वप्नामृतं पिबेत् स सुमतिः झटिति इह सन्देह-स्वप्नाज्जागर्त्ति । ततश्चैतन्यमवाप्तः प्रेमजलधौ खेलति । यतोऽतुलकरुणां तस्मिन् कुञ्जनृपतौ श्रीकृष्णे भृशं धत्ते ॥९॥

तुम्हारे नामकरण के समय श्रीनन्दमहाराज के समक्ष यदुकुलाचार्य वेदवेत्ता गर्गमुनि ने "तुम्हारे इस बालक का किसी समय पीतवर्ण अवतार होगा।" ऐसा जो कहा था वह मिथ्या नहीं है, अतएव मेरा स्वप्न सत्य है। यहाँ पर मेरी कोई भ्रान्ति नहीं है। "वह गौरांग साक्षात् तुम ही हो" यह मेरा अनुभव सत्य ही है ॥८॥

जिस का चित्त-भ्रमर यह आश्चर्य-स्वप्नामृत (स्वप्नविलासा-

मृत) पान करेगा वह सुमति-जन सन्देह-स्वप्न से अर्थात् श्रीनन्दनन्दन शचीनन्दन हैं किम्वा नहीं, इससे शीघ्र ही जागरित होगा और प्रत्युत चैतन्य को प्राप्त होकर प्रेम-सागर में क्रीड़ा करेगा। इससे उन कुञ्जनृपति श्रीकृष्ण में तत्सम्बन्धी अतुलकरुणा को अत्यन्त धारण कर अतिशय कृपाभाजन होगा ॥ ६ ॥

इति—कुसुमवन निवासी कृष्णदास द्वारा स्वप्नविलासामृत का अनुवाद समाप्त हुआ।

कपिलतन्त्र के नरमपटल में—

क्वचित् सापि कृष्णं प्राह शृणु मद्वचनं प्रिय !।
भवता च सहैकत्वमिच्छेऽहं भवितुं प्रभो !॥
मम भावान्वितं रूपं हृदयाल्हादतत्परम्।
परस्परोरुमध्यस्थं क्रीड़ा-कौतुक-मङ्गलम्॥
महाभाव-रस-युक्तं रूपमेकं प्रकाशय॥
श्रुत्वा तु प्रेयसीवाक्यं परमप्रीतिसूचकम्।
स्वेच्छयासीद् यथापूर्व्वमुत्साहेन जगद्गुरुः॥
प्रेमालिङ्गनेन योगेन चाचिन्त्य-शक्ति-योगतः।
राधाभाव - कान्तियुतां मूर्त्तिमेकां प्रकाशयत्॥

स्वप्ने तु दर्शयामास राधिकायै स्वयं प्रभुः ।
अजो द्विभावमापन्नः स्वयं कृष्णस्वरूपतः ।।
अन्तः कृष्ण बहिर्गौरं द्वयोर्भक्तिपरो द्विजः ।
प्रेमभावसमापन्नो निरुपाधिः स्वयं हरिः ।।

किसी समय वह श्रीराधिका श्रीकृष्ण से कहने लगी—हे प्रिय श्रीकृष्ण ! आपके साथ एक स्वरूप होने की मेरी इच्छा है । मेरे भाव से युक्त, हृदयाल्हादकारी, परस्पर-हृदयस्थित, क्रीड़ाकौतुक से मंगलमय, महाभाव-रस युक्त एक रूप का प्रकाश कीजिये । इस प्रकार परम प्रीति सूचक प्रेयसी-वाक्य का श्रवण कर जगद्गुरु श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से उत्साह के साथ यथा-पूर्व-स्वरूप में अवस्थित हुए । प्रेमालिङ्गन योग से तथा अचिन्त्यशक्तियोग से श्रीकृष्ण ने राधाभाव-कान्ति से युक्त एक सुन्दर-मूर्त्ति को प्रकट किया एवं स्वयं प्रभु ने अपने को स्वप्न में श्रीराधिका को दिखलाया । स्वयं अज श्रीकृष्ण अपने स्वरूप से दो भाव को प्राप्त हुये, अन्तर में श्रीकृष्ण तथा बाहर गौर । दोनों के भक्तिपरायण, प्रेमभाव-समापन्न, उपाधिरहित स्वयं हरि इस प्रकार गौरांग स्वरूप बने ।।

स्वप्नविलासामृत की पदावली

निधुवने दुहुँ जने चौदिके सखीगणे
शुतियाछे रसेर अलसे ।
निशि शेषे विधुमुखी उठिलेन स्वप्न देखि
कान्दि कान्दि कहेन बँधु पाशे ।।
उठ उठ प्राणनाथ कि देखिलाम अकस्मात्
एक युवा गौर वरण ।

किवा तार रूप ठाम यिनि कतकोटि काम
रसराज रसेर सदन ॥
अश्रु कम्प पुलकादि भाव भूषा निरवधि
नाचे गाय महामत्त हैया ।
अनुपम रूप देखि जुड़ाइल मोर आँखि
मन धाय ताहारे देखिया ॥
नव जलधर रूप रसमय रसकूप
इहा वइ ना देखि नयने ।
तबे केन विपरीत हेन हैल आचम्बित
कह नाथ इहार कारणे ॥
चतुर्भुज आदि कत वनेर देवता यत
देखियाछि एइ वृन्दावने ।
ताहे तिरपित मन ना हइल कदाचन
गौरांग हरिल मोर मने ॥
एतेक कहिते धनि मूर्च्छा प्राय भेल जानि
विदगध रसिक नागर ।
कोलेते करिया वेड़ि मुख चुम्बे कत वेरि
हेरिया जगदानन्द भोर ॥ १ ॥

शुनइते राइ वचन अधरामृत
विदगध रसमय कान ।
आपनाक भावे भाव प्रकाशिते
धनि अनुमति भेल जान ॥

सुन्दरि ये कहिले गौरस्वरूप
कोई नाहि जानये केवल तुया प्रेम विने
मोहे करवि हेन रूप ।।
कैछन तुया प्रेमा कैछन मधुरिमा
कैछन सुखे तुहुँ भोर ।
एतिन वाञ्छित धन ब्रजे नहिल पूरण
कि कहव ना पाइये ओर ।।
भाविये देखिनु मने तुहारि स्वरूप विने
ए सुख आस्वाद कभु नय ।
तुया भाव कान्ति धरि तुया प्रेम गुरु करि
नदीयाते करब उदय ।।
साधव मनेर साधा घुचाव मनेर बाधा
जगते विलाव प्रेम धन ।
बलराम दासे कय प्रभु मोर दयामय
ना भजिनु मुइ नराधम ।। २ ।।

बँधु हे शुनइते काँपइ देहा
तुहुँ ब्रज जीवन तुया विनु कैछन
ब्रजपुर बान्धव थेहा ।।
जल विनु मीन फणी मणि बिनु
तेजये आपन पराण ।
तिल आध तुहारि दरश बिनु तैछन
ब्रजपुर गति तुँहु जान ।।

सकल समाधि कोन सिधि साधबि
पाओबि कोन हि सुख ।
किये आन जन मरमहि जानब
इथे लागि विदरये बुक ॥
वृन्दावन कुंज निकुंज हि निवसयि
तुहुँ वर नागर कान ।
अहर्निशि तुहारि दरश विनु झुरब
तेजब सबहुँ पराण ॥
अग्रज संगे रंगे यमुना तटे
सखा सङ्गे करबि विलास ।
परिहरि मुझे किये प्रेम परकाशबि
ना बुझये बलरामदास ॥३॥

शुनहुँ सुन्दरि मझु अभिलाष ।
ब्रजपुर प्रेम करब परकाश ॥
गोप गोपाल सब जन मेलि ।
नदीया नगर परे करबहुँ केली ॥
तनु तनु मेलि होइ एक ठाम ।
अविरत वदने बोलब तुया नाम ॥
ब्रजपुर परिहरि कबहुँ ना याव ।
ब्रज बिनु प्रेम ना होयब लाभ ॥
ब्रजपुर भावे पूरब मन काम ।
अनुभवि जानल दास बलराम ॥

एत शुनि विधुमुखी मने हये अति सुखी
कहे शुन प्राणनाथ तुमि ।
कहिले सकल तत्व बुझिनु स्वपन सत्य
सेइ रूप देखिब कि आमि ॥
आमारे ये संगे लवे दुइ देह एक हवे
असम्भव हइबे केमने ।
चूड़ा धड़ा कोथा खोवे वाँशी कोथा लुकाइबे
काल गौर हइबे केमने ॥
एत शुनि कृष्ण चन्द्र कौस्तुभेर प्रतिविम्बे
देखाओल श्रीराधार अंग ॥
आपनि ताहे प्रवेशिला दुइ देह एक हैला
भाव प्रेममय सब अंग ॥
निधुवने एइ कये दुहुं तनु एक हये
नदीयाते हइला उदय ।
संगेते से भक्तगणे हरिनाम संकीर्त्तने
प्रेमवन्याय जगत भासाय ॥
बाहिरे जीव उद्धारण अंतरे रस आस्वादन
ब्रजवासी सखा-सखी संगे ।
वैष्णव दासेर मन हेरि रांगा श्रीचरण
ना हेरिलाम से सुख तरङ्गे ॥ ५ ॥

मुद्रक—श्री प्रिन्टिंग प्रेस, भरतपुर दरवाजा, मथुरा ।

यन्त्रस्थ—

प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ—

[१] श्रीश्रीहरिभक्तिविलासः

(सटीक-सानुवादः)

[२] लघुभागवतामृतम् (सानुवादम्)

[३] अलङ्कारकौस्तुभः

(सटीक-सानुवादः)

प्रस्तुतीकरण—

[४] षट्सन्दर्भः (सानुवादः)

(कृष्णदासब

मुद्रक—श्री प्रिन्टिंग प्रेस, भरतपुर दर्वाजा, मथुरा।